# शून्य गणित – एक तकनीकी विवेचना

रमा जैन
एसोसिएट प्राफसर, गणित विभाग
महिला विद्यालय पी0 जी0 कॉलेज
अमीनाबाद, लखनऊ(उ0 प्र0)–226018, भारत
ramajain26@yahoo.com

**सार**

ईस्वी सन् के आरम्भ के लगभग, भारतवर्ष में शून्य का आविष्कार किया गया था। जिससे कि अंकों को दस के आधार पर लिखने में सुविधा हो। गणित के इतिहास में भारतीय अंकों के अपरिहार्य अंश के रूप में भारतीय शून्य का पश्चिमी देशों की तरफ विस्तार हुआ। वस्तुत: भारतीय शून्य एक बहुआयामी गणितीय विधा है जो कि एक प्रतीक, एक अंक, एक परिमाण, एक दिशा विभाजक और एक स्थिति परक, सभी एक पूर्ण रूप से स्थापित "दाशमिक अंक पद्धति" में क्रियाशील हैं एवं अंकगणित के साथ–साथ बीजगणित, में भी प्रयुक्त हैं। इसके अनंत व अनिर्णीत स्वरूप भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

**बीज शब्द:** इतिहास, आविष्कार, अंकगणित, बीजगणित, परमाल्प राशि, अनंत एवं अनिर्णीत स्वरूप।

# Mathematics of zero-a technical analysis

Rama Jain
Associate Professor, Department of Mathematics
Mahila Vidyalaya P.G. College
Aminabad, Lucknow(U.P.)-226018, India
ramajain26@yahoo.com

**Abstract**

Zero was invented in India at the beginning of A.D.'s so that it becomes easier to write a number at the base of ten. Indian zero was disseminated towards western countries as an unavoidable part of Indian numbers in the history of Mathematics. However, Indian zero is a multi-faceted mathematical object, a symbol, a magnitude, a number, a direction separator and a place holder, all in one operating within a fully established "Decimal number system", and is useful in Arithmetic as well as in Algebra. Its infinity and indefinite forms are also equally important.

**Key words**: History, invention, Arithmetic, Algebra, limiting number, infinity and indefinite form.

**प्रस्तावना**

विश्व के विभिन्न स्थानों पर स्वतंत्र रूप से अलग–अलग तरह के गणना चिन्हों(अंकों) व गणना पद्धतियों का विकास हुआ, जिसमें भारतीय, रोमन, मिश्र व क्रीट द्वीप के जनजातियों की गणना पद्धतियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है, पर इन सभी में भारतीय गणना पद्धति सबसे सरल, व्यावहारिक व सटीक थी, जिस कारण उसने अन्य सभी को प्रचलन से बाहर करके सारे विश्व में अपना एक छत्र आधिपत्य स्थापित किया।

भारतीय गणना पद्धति को "दाशमिक गणना पद्धति" भी कहा जाता है। इस गणना पद्धति का आधार दस ही है। प्रश्न यह है कि विश्व के अलग–अलग हिस्सें में स्वतंत्र रूप से विकसित गणना पद्धतियों का आधार दस के स्थान पर बारह क्यों नहीं लिया गया? वैज्ञानिक आधार से बारह अधिक उपयुक्त होना चाहिए क्योंकि यह आधे, तिहाई और चौथाई हिस्से तक पूर्णांकों में विभक्त हो जाता है। इस पर नृतत्व शास्त्री का कथन है कि चूँकि गणना के प्रारम्भिक समय के लोग अपनी हाथों की अंगुलियों का इस्तेमाल किया करते थे जो कि संख्या में दस होती हैं। इसी से विश्व की अधिकांश गणना पद्धतियों में दस अंकों का आधार विकसित हुआ।

## शून्य का आविष्कार

भारतीय गणना पद्धति में "शून्य" वह अनुपम गणना चिन्ह(अंक) है जो इसे विश्व के अन्य किसी भी गणना चिन्ह पद्धति से अधिक सरल, श्रेष्ठ व सुव्यवस्थित सिद्धांत बनाता है। परन्तु शून्य कैसे प्रचलन में आया, इस पर मतैक्य नहीं है। चूँकि भारतीय गणना पद्धति के अनुसार, शून्य का मान "कुछ नहीं" और "अनंत" दोनों होता है और भारतीय दार्शनिक मान्यता है कि अनंत हमेशा जहाँ कुछ न हो अर्थात् शून्य से प्रकट होता है। इस लिए बहुत सम्भव है कि गणित में शून्य की अवधारणा दर्शन से आई हो। शून्य को शुरू से डॉट( . ) के रूप में या फिर गोलाकार रूप में लिखा जाता है। वह इसलिए, क्योंकि गोलाकार का मतलब "घूम–फिर के वही" होता है यानि की कुछ नहीं। यह रूप संस्कृत से निकला है क्योंकि संस्कृत में भी शून्य का मतलब कुछ नहीं होता है।

इतिहासकार मानते हैं कि सन् 458 ए0 डी0 से शून्य अस्तित्व में आया परन्तु इस पर काफी मतभेद है। शून्य के बारे में सबसे पहले गणितज्ञ "ब्रह्मगुप्त"(598–600 ए0 डी0), जिनका जन्म मुल्तान(पाकिस्तान) में हुआ था, ने अपनी पुस्तक "ब्रह्मगुप्त–सिद्धांत" में दिया जिसको बाद में भारतीय गणितज्ञ "भास्कर"(1114–1185 ए0 डी0) ने थोड़ा संशोधित करते हुए अपनी पुस्तक "लीलावती" में विस्तार पूर्वक लिखा। शून्य के आविष्कार से ही प्रेरित होकर भारतीयों ने ऋणात्मक अंकों का आविष्कार किया और बाद में "बीजगणित" को विकसित किया। शून्य के आविष्कार के कारण ही अंकों को दस के आधार पर लिखने में सुविधा है। शून्य की गणना हिन्दू लोग अंकों में करते थे और बक्षाली हस्तलिपि के मूल के समय(लगभग 300 ई0) में वे लोग अपनी अंकगणित में उसका प्रयोग करते थे। शून्य को जोड़ने व घटाने के परिक्रमों का उल्लेख प्रसंगवश "वाराहमिहिर"(लगभग 500 ई0) की "पंचसिद्धांतिका" में हुआ है। दशमलव गणित का सर्वस्व भास्कर प्रथम(629 ई0) के आर्यभटीय–भाष्य में उपलब्ध है। सामान्यत: यह जाना जाता है कि शून्य की अवधारणा भौगोलिक रूप से दो पृथक सभ्यताओं से प्रारम्भ हुई। एक भारतीय शून्य जो कि अब सर्वव्यापी शून्य है और दूसरा "माया" का शून्य जो कि केन्द्रीय अमेरिका में पृथक रूप से प्रकट हुआ है।

यदि शून्य केवल परिमाण या दिशा विभाजन(यानि शून्य स्तर से ऊपर व शून्य स्तर से नीचे) को प्रदर्शित करता है, तो चार हजार वर्ष पूर्व मिस्र में भी यह दिखता है। यदि शून्य केवल स्थान परक मात्र था जो कि एक स्थान विशेष पर अंक की अनुपस्थिति प्रदर्शित करता है उदाहरणत: 101 में शून्य, दशम् स्थान पर अंक की अनुपस्थिति प्रदर्शित करता है(जोसेफ, 98–99) तो यह शून्य बेबीलोन के स्थैतिक अंक पद्धति में भारतीय शून्य के प्राकट्य से बहुत पहले से उपस्थित था। सुपरिभाषित स्थैतिक अंक पद्धति में मात्र एक रिक्त स्थान प्रदर्शित करने वाला ऐसा शून्य चीन के गणित में वर्तमान भारतीय शून्य के कुछ शताब्दियों पहले भी था। यद्यपि प्रतीक शून्य की चीन में अनुपस्थिति ने उच्च घात के समीकरणों की, जिसमें भिन्न सम्मिलित है, कुशल गणना में बाधा नहीं डाली (जोसेफ, 2008)।

## शून्य गणित की तकनीकी विवेचना

हिन्दुओं की अंकगणित में मिलने वाला शून्य गणित का विवेचन उनके लिए बीजगणित के विवेचन से भिन्न है। इस भेद को पूर्णतया स्पष्ट करने के लिए नीचे हम पाटीगणित(अंकगणित) और बीजगणित में मिलने वाले शून्य संबंधी निष्कर्षों को अलग–अलग उपस्थित करेंगे।

### अंकगणित में शून्य

ब्राहम स्फुट सिद्धांत में शून्य की परिभाषा इस प्रकार मिलती है–

$$\text{अ} - \text{अ} = 0$$

बाद के सब ग्रंथों में भी इसी को दोहराया गया है।

### पाटीगणित(अंकगणित) के हिन्दू ग्रंथों में बताये गये शून्य परिक्रम संबंधी निष्कर्ष

श्रीधर कहते हैं–

"यदि शून्य में किसी संख्या को जोड़ दें तो योगफल जोड़ी हुई संख्या के तुल्य मिलता है। यदि किसी संख्या में शून्य को जोड़ दे या घटा दें तो उस संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यदि शून्य को गुणा इत्यादि(वर्ग या वर्गमूल भी) करें तो फल शून्य ही मिलता है। यदि किसी संख्या को शून्य से गुणा करें तो भी गुणनफल शून्य ही मिलता है।"
इसी प्रकार के कथन आर्यभट्ट द्वितीय ने अपने "महासिद्धांत" में पाटीगणित नामक अध्याय में तथा नारायण ने अपने "पाटीगणित" में दिये हैं। महावीर अपनी गणित "सार–संग्रह में लिखते हैं–

"यदि किसी संख्या को शून्य से गुणा करें तो गुणनफल शून्य मिलता है। यदि किसी संख्या को शून्य से भाग दें या उसमें शून्य को जोड़ या घटा दे तो उस संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता है।"

महावीर का कथन कि शून्य से भाग देने पर भाग दी हुई संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता है, सपष्टतया अशुद्ध है। इसका शुद्ध उत्तर महावीर से तीन शताब्दी पहले के गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त को ज्ञात था। अतएव आश्चर्य की बात है कि महावीर ने इस प्रकार का अशुद्ध कथन किस कारण से दिया है। संभव है कि जहाँ तक अंकगणित का संबंध है कि शून्य द्वारा किये गये भाग को भाग ही न मानते हों।

**बीजगणित में शून्य**

बीजगणित में शून्य की चर्चा सबसे पहले ब्रह्मस्फुट सिद्धांत में इस प्रकार मिलती है–

"ऋणात्मक संख्या में शून्य घटाने पर शेष ऋणात्मक मिलता है। धनात्मक संख्या में शून्य घटाने पर शेष धनात्मक मिलता है। शून्य में शून्य घटाने पर शून्य मिलता है।"

"शून्य और ऋणात्मक संख्या, शून्य और धनात्मक संख्या तथा शून्य और शून्य, प्रत्येक का गुणनफल शून्य है।"

"शून्य को शून्य से भाग देने का फल शून्य है"

भास्कर द्वितीय ने "लीलावती" तथा अपनी "बीजगणित" में शून्य परिक्रम संबंधी निष्कर्षों का कथन किया है–

"शून्य में किसी संख्या को जोड़ने पर योगफल जोड़ी हुई संख्या के तुल्य होता है..... यदि किसी संख्या का गुणा शून्य हो और हर भी शून्य हो तो समझना चाहिए कि उस संख्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इसी प्रकार शून्य को जोड़ने या घटाने पर भी संख्या में कोई परिवर्तन नहीं होता।"

बीजगणित में भी यही निष्कर्ष दिये गये हैं। साथ ही साथ यह भी बताया गया है कि जब कोई राशि शून्य से घटाई जाती है तब उसका चिन्ह बदल जाता है परन्तु जोडने में चिन्ह वही रहता है।

**परमाल्प राशि के रूप में शून्य**

परमाल्प संख्या के रूप में शून्य की कल्पना भास्कर द्वितीय के ग्रंथों में अधिक स्पष्ट है। वे कहते हैं–

"किसी संख्या को शून्य से गुणा करने पर गुणनफल शून्य होता है, परन्तु बाद में यदि और परिक्रम करने हैं तो गुणनफल को शून्य न लेकर शून्य को गुणक की तरह रखना चाहिए"

टीकाकार कृष्ण ने– $0 \times अ = 0 = अ \times 0$

को इस प्रकार सिद्ध किया है–

"जैसे–जैसे गुण्य कम किया जायेगा, वैसे–वैसे गुणनफल भी कम होता जायेगा ..... यदि गुण्य को परमाल्प कर दिया जाए तो गुणनफल भी परमाल्प हो जायेगा। परन्तु परमाल्प होने का अर्थ शून्य होता है, अतएव यदि गुण्य शून्य हो तो गुणनफल भी शून्य होगा ..... इसी प्रकार, जैसे–जैसे गुणक कम किया जायेगा, वैसे–वैसे गुणनफल भी कम होता जायेगा और गुणक के शून्य हो जाने पर गुणनफल भी शून्य हो जायेगा।"

उपर्युक्त अवतरण में शून्य को अवरोही राशि की सीमा के रूप में कल्पित किया गया है।

**अनंत**

किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर जो लब्धि मिलती है उसे भास्कर द्वितीय ने "ख–हर" कहा है। जो कि ब्रह्मगुप्त के "खच्छेद"(वह राशि जिसका हर शून्य है) का पर्यायवाचक है। "ख–हर" के मान के विषय में भास्कर द्वितीय कहते हैं–

"जिस प्रकार अनंत और अच्युत ईश्वर में, प्रलय के समय बहुत से भूतगणों का प्रवेश होने से, या सृष्टि के समय उनके निकल जाने से कोई विकार नहीं होता, उसी प्रकार इस शून्य हर वाली(ख–हर) राशि में बहुत बड़ी संख्या को भी जोड़ने या घटाने से कोई परिवर्तन नहीं होता।"

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि भास्कर द्वितीय को ज्ञात था कि

$$\frac{अ}{0} = \infty \quad और \quad \infty + क = \infty$$

### अनिर्णीत स्वरुप

ब्रह्मगुप्त का यह कथन अशुद्ध है कि

$$\frac{0}{0} = 0$$

भास्कर द्वितीय ने ब्रह्मगुप्त की इस अशुद्धि को शुद्ध करने का प्रयत्न किया है, उनके अनुसार

$$\text{सीमा}_{\text{क} \to 0} \quad \frac{\text{ख} \times \text{क}}{\text{क}} = \text{ख}$$

तथापि पारिभाषिक शब्द के अभाव के कारण उन्होंने परमाल्प राशि को शून्य कहा है फिर भी ज्योतिष विज्ञान में इस निष्कर्ष का जो प्रयोग किया है इससे बिल्कुल स्पष्ट है कि शून्य से उनका तात्पर्य उस छोटी राशि से है, जिसका सीमान्त मान शून्य है। टेलर और बापूदेव शास्त्री का भी यही मत है। वस्तुत: भास्कर द्वितीय ने इसे व्यक्त करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया है वह दोषपूर्ण है। उनका यह कथन कि

$$\frac{\text{अ}}{0} \times 0 = \text{अ}$$

बिल्कुल शुद्ध नहीं है, क्योंकि यह स्वरूप वस्तुत: अनिर्णीत है और इसका मान सदैव 'अ' नहीं होगा, परन्तु तो भी इतने प्राचीन काल में 0 को एक अर्थ देने का उनका प्रयत्न तथा इस प्रश्न का आंशिक हल अत्यन्त सराहनीय है, जबकि हम देखते हैं कि यूरोप के गणितज्ञों ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य काल तक इस प्रकार की अशुद्धियाँ की हैं।

### निष्कर्ष

शून्य की अवधारणा से ही "दाशमिक अंक पद्धति" बलवती हुई है और स्थैतिक अंक पद्धति में शून्य एक रिक्त स्थान प्रदर्शित करता है शून्य का अंकगणित व बीजगणित में प्रयोग अपरिहार्य है इसके अनंत व अनिर्णीत स्वरूप के अस्तित्व के बिना आधुनिक गणित का विकास अकल्पनीय है।

### संदर्भ


1. जोसेफ, जॉर्ज जी0(2008) ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ जीरो, ईरानियन जर्नल फॉर द हिस्ट्री ऑफ साइंस, खण्ड 6, मु0 पृ0 37–48।
2. ब्रह्मगुप्त(628 ई0) ब्रह्मस्फुट सिद्धांत, नियम 31–35, पृ0 309–310।
3. आर्यभट्ट द्वितीय(ल0 950 ई0) महासिद्धांत, पृ0 146।
4. भास्कर द्वितीय(1150 ई0) भास्करीय बीजगणित, पृ0 5–6।
5. थीबो, जी0(1899) एस्ट्रोनॉमी, एस्ट्रोलॉजी एण्ड मैथेमेटिक्स, स्ट्रॉसबर्ग, पृ0 73।
6. नारायण(1356 ई0) गणित कौमुदी(हस्तलिखित), प्रकरण 1, श्लोक 30।
7. दत्त, विभूति विभूषण तथा सिंह, अवधेश नारायण(1956) हिन्दू गणित शास्त्र का इतिहास, भाग 1, मु0 पृ0 224–232।
8. दत्त, विभूति विभूषण(1927) अर्ली हिस्ट्र ऑफ द अर्थमेटिक ऑफ जीरो एण्ड इनफिनिटी इन इण्डिया, बुलेटिन ऑफ कलकत्ता मैथेमेटिकल सोसायटी, भाग 18, मु0 पृ0 165–176।
9. महावीर(850 ई0) गणित सार संग्रह, श्लोक 49, पृ0 6।